इकाई 25 रीति सम्प्रदाय और वक्रोक्ति सम्प्रदाय

इकाई की रुपरेखा

25.0 उद्देश्य

25.1 प्रस्तावना

25.2 रीति सम्प्रदाय

25.3 वक्रोक्ति सम्प्रदाय

25.4 सारांश

25.5 शब्दावली

25.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

25.7 बोध प्रश्न

25.0 उदेश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप

- संस्कृत काव्यशास्त्र की परम्परा में रीति का परिचय दे सकेगें।
- सम्प्रदाय के रूप में रीति सम्प्रदाय और उसके प्रवर्तक आचार्य वामन का उल्लेख कर सकेंगे।
- काव्यशास्त्र में अलंकार के रूप में वक्रोक्ति को माना गया इसका उल्लेख कर सकेंगे।
- वक्रोक्ति सम्प्रदाय की सभी मान्यताओं का परिचय दे सकेंगे।
- संस्कृत काव्यशास्त्र में आचार्य कुन्तक के योगदान का वर्णन कर सकेंगे।

25.1 प्रस्तावना

संस्कृत काव्यशास्त्र की परम्परा बहुत पुरानी है। काव्यशास्त्र के तत्व वैदिक काल से प्राप्त किये जाते हैं, क्योंकि अलंकारिक वर्णन ऋग्वेद में मिलते हैं। काव्यशास्त्र के कुल छः सम्प्रदाय माने गये हैं–

1) ध्वनि सम्प्रदाय
2) अलंकार सम्प्रदाय
3) रस सम्प्रदाय
4) रीति सम्प्रदाय
5) औचित्य सम्प्रदाय
6) वक्रोक्ति सम्प्रदाय।

सम्पूर्ण काव्यशास्त्र परम्परा में विभिन्न सम्प्रदायों का इसलिए उदय हुआ कि काव्य की आत्मा के अन्वेषण के विषय में विभिन्न आचार्यों ने भिन्न मार्गों का अनुसरण किया। यद्यपि ध्वनि के प्रतिष्ठापक आचार्य मम्मट ही रहे किन्तु काव्य की आत्मा के रूप में

इसे ध्वन्यालोक में आनन्दवर्धन ने माना। अलंकारवादी आचार्यों में मम्मट भी हैं। इनके अतिरिक्त दण्डी, जयदेव, भामह आदि सभी अलंकारिक आचार्य हैं। वस्तुतः रस सम्प्रदाय आचार्य भरतमुनि से प्रारम्भ होता है किन्तु आगे चलकर रसवादी आचार्यों में शंकुक, लोल्लत, भट्टनायक और अभिनवगुप्त आदि प्रमुख हैं। रीति गुण है जिसके प्रधान आचार्य वामन हैं। काव्य में वक्रोक्ति को अलंकार के रूप में प्रतिष्ठा देने वाले आचार्य कुन्तक वक्रोक्ति के अधिष्ठाता हैं। इसी प्रकार सेमेन्द्र ने औचित्य सम्प्रदाय का पल्लवन किया जिसका ग्रन्थ औचित्यविचारचर्चा है।

इस इकाई का अध्ययन कर लेने के बाद आप संस्कृत काव्यशास्त्र की परम्परा में रीति सम्प्रदाय के अधिष्ठाता वामन और वक्रोक्ति के आचार्य कुन्तक के योगदानों का भलीभांति उल्लेख कर सकेंगे।

25.2 रीति–सम्प्रदाय

काव्यशास्त्रीय मान्यताओं में काव्य के शरीर के निर्माण से लेकर उसकी आत्मा तक का विचार किया गया है। काव्यशास्त्र के आचार्यों की दृष्टि में भारतीय दर्शन की भांति आत्म तत्व का चिंतन प्रधान रहा है। मनुष्य की भाँति ही काव्य के भी शरीर की कल्पना की गई जिसमें पद–रचना, वाक्य–रचना से लेकर छन्द–रचना तक ही यात्रा में काव्य के शरीर का संवर्धन किया गया। किन्तु केवल शरीर से सृष्टि में किसी भी वस्तु का संचालन नहीं हो सकता जबतक उसमें शक्ति का सूत्रपात न हो। वही शक्ति प्राणशक्ति है, उसी में आत्मशक्ति का विचार किया जाता है। आचार्यों ने काव्यपुरुष के शरीर में आत्मशक्ति की स्थापना जिस शास्त्र में किया है उसी शास्त्र का नाम काव्यशास्त्र है। इस क्रम में आपने पूर्व की इकाइयों में इस और अलंकार सम्प्रदाय का अध्ययन कर लिया है। इसके पश्चात् आप इस इकाई में क्रमशः वक्रोक्ति और औचित्य सम्प्रदायों का अध्ययन करने जा रहे हैं। सर्वप्रथम आप रीति–सम्प्रदाय का परिचयात्मक अध्ययन कीजिए।

रीति–सम्प्रदाय के प्रतिपादक आचार्य वामन हैं, इन्होंने रीति को काव्य की आत्मा के रूप में स्वीकार किया है– ''रीतिरात्मा काव्यस्य।''

पहले रीति की परिभाषा जानना आवश्यक है। रीति का लक्षण करते हुए बताया गया है–

''विशिष्टापदरचना रीतिः। अर्थात् विशिष्ट पदों की रचना रीति कहलाती है।

रचना में यह विशेषता गुणों के कारण उत्पन्न होती है। अतः कहना पडेगा कि काव्य में जिस रीति की बात की जा रही है वह काव्य के गुणों पर ही अवलम्बित रहती है। रीति–सम्प्रदाय को इसीलिए गुण–सम्प्रदाय भी कहा जाता है। वैदर्भी, गौडी, पांचाली रीतियाँ होती हैं जो विदर्भ में होती हैं उसे वैदर्भी तथा गोण देश में होने वाली गौणी कही जाती है। इनके अन्तर का वर्णन आचार्य दण्डी ने काव्यादर्श में किया है। पांचाली रीति का प्रयोग करने वाले प्रसिद्ध आचार्य कवि बाण हैं। रीति के प्रवर्तक वामन ही वह आचार्य हैं जिन्होंने मुखर होकर काव्य में गुण एवं अलंकार को अलग–अलग प्रतिपादित किया इन्होंने अपने ग्रन्थ काव्यालंकारसूत्र में कहा कि –

''काव्यशोभायाः कर्तारोधर्माः गुणाः''।
तदतिशय हेतवस्त्वलंकाराः।।

अर्थात् काव्य में शोभा के उत्पादक गुण कहलाते हैं और उसकी शोभा में वृद्धि करने वाले तत्व अलंकार कहलाते हैं।

सैद्धान्तिक स्वरूप

आचार्य वामन ने रीति को काव्य की आत्मा मान लिया है यह आप जान चुके हैं। काव्य से आकव्य को बताने के लिए तीन प्रकार के तत्वों को पहचाना गया था–

1. रस तत्व, 2. अलंकारतत्व, 3. गुणतत्व। दोनों का भी विचार किया गया था। आचार्य वामन के समय तक उपर्युक्त तत्वों का वर्णन भारतमुनि, दण्डी, भामह और रूद्रट और उद्भट आदि करते चले आ रहे थे। भरतमुनि का कथन है– 'रसःकाव्यार्थः'। अर्थात् रस ही काव्य का प्रधान अर्थ अथवा तत्व है। दण्डी की मान्यता थी कि अलंकारों से ही काव्य में शोभा की उत्पत्ति होती है–

''काव्यशोभाकरान् धर्मान् अलंकारान् प्रचक्षते''।

उद्भट ने भी अलंकारों का वर्णन किया किन्तु भामह ने अलंकार को वक्रोक्ति स्वरूप माना और कहा–

सैषा सर्वत्र वक्रोक्तिरनयार्थो विभाव्यते।
यत्नो अस्यां कविना कार्यः कोलंकारोऽनया विना।।

अर्थात् सातिशय उक्ति ही तो वक्रोक्ति है। यही वह तत्व है जिससे काव्यार्थ विभावित होता है। भामह ने अपने ग्रन्थ का नाम काव्यालंकार दिया; इन वर्णनों से यह ज्ञात है कि, भरत, दण्डी और भामह ने गुणतत्व से परिचय कराया किन्तु स्पष्ट रूप से श्रेष्ठता प्रतिपादन नहीं किये, भरत और दण्डी ने काव्य में गुणों की संख्या 10 मानी थी और भामह ने केवल 3 ही माना। वामन ने गुणों को शब्दगत तथा अर्थगत मानकर उनकी संख्या द्विगुणित कर दी। दशगुणों के नाम का निर्देश भरत के नाद्शास्त्र में किया गया है– श्लेष, प्रसाद, समता, समाधि, माधुर्य, ओज, सुकुमारता, अर्थव्यक्ति, उदारता, कान्ति। दण्डी ने भी इनका निर्देश किया है जिन्हें वे वैदर्भमार्ग का प्राण मानते हैं। गोणी के लिए ओज और कान्ति की, पांचाली के लिए माधुर्य तथा प्रसाद की सत्ता का रहना अनिवार्य बतलाया।

रीति–सम्प्रदाय में अलंकार और गुणों का भेद स्पष्ट कर साहित्य का बड़ा उपकार किया गया है। वामन का कथन है कि काव्य में शोभा का सर्जन करने वाले धर्म 'गुण' हैं, और अतिशय करने वाले धर्म अलंकार हैं।

रीति सम्बन्धी सिद्धान्तों का विवेचन गुणमत से, रसमत तक और ध्वनिमत से किया जाता है। किन्तु वक्रोक्ति को जानने के लिए हम अलंकार मत का प्रयोग करते हैं, तो यह सिद्धान्त आसानी से दृष्टिपथ में आ जाता है।

वामन का ग्रन्थ 'काव्यालंकार सूत्र है जिसमें इन्होंने अलंकार, रस, गुण आदि का ठीक से विचार किया है। जिन विषयों पर इनके पूर्व भी चल रहा था, अलंकार को वामन ने केवल उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपक इस सब की सीमा तक ही नहीं देखा और बताया बल्कि व्याप्ति के स्तर पर काव्य के अन्तस् तक अलंकारों का विचार किया। यही वे आचार्य हैं, जिन्होंने ''सौन्दर्यम् अलंकारः कहा अर्थात् काव्य का सबकुछ सौन्दर्य है अथवा सौन्दर्य ही काव्य का सब कुछ है–

सू0 – सौन्दर्यमलंकारः। (काव्यालंकासूत्र, प्र.अ.अधि.सूत्र सं.2 एवं)

वृ0 – अलंकृतिरलंकारः, करणयुत्पत्त्या पुनः अलंकारशब्दोयमुपमादिषु वर्त्तते।

इस प्रकार अलंकार की संज्ञा तो सौन्दर्य को दी गयी है। उपमा आदि का सौन्दर्योत्पत्ति में सहायक होना अलंकारिकता है। काव्यालंकारसूत्र के चौथे अधिकरण में वामन ने शब्द के अर्थ से दो प्रकार के अलंकारों का वर्णन किया जिन्हें शब्दालंकार और अर्थालंकार कहा जाता है। इनके पूर्व के भरतदण्डी और भामह आदि ने ऐसा नहीं किया था।

उद्भट ने काव्यालंकार सार संग्रह में ऐसा विभाजन स्वीकार किया है। अलकारों की संख्या की मान्यता में दण्डी ने सैतीस (37) अर्थालंकारों का वर्णन किया है। आचार्य भरत ने भी वर्णन किया है। भामह ने 6 प्रकार के अर्थालंकार बतलाए। भामह के समय अलंकारों की संख्या तैंतालीस (43) हो गयी थीं। आचार्य वामन ने इकत्तीस (31) अलंकार ही स्वीकार किये। इनमें से तीन इनके अपने कल्पित हैं, और 28 प्राचीन हैं।

इसके विवेचन में दण्डी की भाँति आचार्य वामन का मत है। अन्तर यह है कि दण्डी ने रसवत् अलंकार में रसों को अन्तर्भूत मान लिया और वामन ने उन्हीं को कान्ति नाम के अर्थगुण में अनतर्भूत मान लिया। काव्यालंकार सूत्र 3,2,14 में वामन ने वस्तु का परीक्षण करने वाला वैज्ञानिक सिद्धान्त बनाया और कहा कि वस्तु के स्वभाव का स्फुटत्व, अर्थव्यक्ति नामक गुण हैं। वर्ण्यविषय की जो स्वभाविक स्पष्टता होती है उसे अर्थव्यक्ति गुण कहा जाता है, जैसे–

सू. – वस्तुस्वभावस्फुटत्वमर्थव्यक्तिः।।4।।

वृत्ति – वस्तूनां भावानां स्वभावस्थ स्फुटत्वं– यदसावर्थव्यक्तिः। यथा – प्रष्ठेषु शंखशकलच्छविषुच्छानां राजीभिरङ्कितमलन्तकलोहिनीभिः। गोरोचनाहरित भुबहिःपलाशभाभ्रोदते कुमुदमम्भसि पल्वलस्य।।

यथा वा–

प्रथममलसैः पर्यस्ताग्रं स्थितं पृथुकेसरै–

र्विरलविरलैरन्तःपत्रैर्मनाङ्मिलितं ततः।

तदनु वलनामात्रं किचिद्र व्यधायि बहिर्दलै–

मुकुलनविधौ वृद्धास्म्नानां बभूव कदर्थना।।।8।।

हिन्दी अर्थ – वस्तु के स्वभाव का स्फुटत्व अर्थव्यक्ति गुण है। वस्तुओं के स्वभाव की जो स्पष्टता है उसे अर्थव्यक्ति गुण कहते हैं, यथा–

शङ्ख – खण्ड के सदृश कान्ति वाली पंखुड़ियों के पिछले भाग में अलन्क (महावर) के समान लाल रेखाओं से अंकित, गाोरोचना के समान हरित एवं बाहरी में पलाश–पत्र के समान भूरे रंग से युक्त कुमुद–पुष्प छोटे तालाब के जल में खिल रहा है।

इस श्लोक के माध्यम से कवि ने सूर्योदय के समय तालाब में खिलते हुए कमल के विकास का स्पष्ट वर्णन किया है। पहले मुरझाए हुए कमल केसरों का अग्रभाग नीचे झुक गया और बाद में बिरली–बिरली पंखुड़ियाँ परस्पर एक दूसरे के लिए मिल गई

हैं। उसके बाद बाहरी पंखुड़ियाँ कुछ संकुचित हो गईं। इस तरह पुराने कमलों के स्पन्दित होने में कदर्थना हुई।।4।। इतने के बाद कहा–

दीप्तरसत्वं कान्तिः।।5।।

अर्थात् दीप्तरसत्व कान्ति गुण हैं। इस प्रकार इनके मत में रसत्व काव्यरसिक का विशेष धर्म है।

आचार्य वामन ने गुणों को सर्वाधिक महत्व दिया है। इन्होंने इसी सन्दर्भ में निम्नलिखित कथन किये –

1. रीतिरात्मा काव्यस्य
2. विशिष्टा पदरचना रीतिः
3. विशेषोगुणात्मा

अर्थात् रीति ही काव्य की आत्मा है, विशिष्ट प्रकार के पदों की रचना रीति है, गुण आत्मा की भाँति विशिष्ट है। इस आधार पर प्रधान रूप से सौन्दर्य का वर्णन किये जाने के कारण इसका नामकरण सौन्दर्य सम्प्रदाय कर दिया जाना चाहिए। उपर्युक्त सैद्धान्तिक स्वरूप को जानने के पश्चात् रीति के प्रकारों की जानकारी कर लेना आवश्यक है।

रीति के प्रकार

गुणों की कल्पना दण्डी ने मार्ग की पृष्ठभूमि पर किया था जो दो प्रकार के हैं –

1. वैदर्भ

2. गोडीय

दाक्षिणात्य मार्ग को वैदर्भ मार्ग कहा जाता है तथा पौरस्त्य मार्ग को गोडीय मार्ग कहा जाता है। दण्डी ने वैदर्भ को ही सराहा था, गोडीय मार्ग का आदर उन्होंने कम किया। भामह ने दोनों को महत्व दिया। इन्हीं मार्गों को वामन ने रीति नाम दिया और संस्था में तीन (3) माना– 1. वैदभी 2. गोडीया, 3. पांचाली।

इन तीनों रीतियों की पारिभाषिकता का अध्ययन आप पूर्व के वर्णन में कर चुके हैं। इन्हीं उपर्युक्त तथ्यों को रीति–सम्प्रदाय के सैद्धान्तिक रूप में स्वीकार किया गया है।

रीति–सम्प्रदाय का समय

वामन को भवभूति एवं माध के पद उद्धृत करने के कारण 750 ई0 के बाद माना जाता है। आचार्य वामन ने अपनी रचना में महाकवि माध व भवभूति के पद्यों को उदाहरण के रूप में ग्रहण किया है, ये दोनों कवि 750 ई. के पहले के हैं। आनन्दवर्धन रचित ध्वन्यालोक में भी वामन का समय आया है। इस स्थिति में तो 850ई. के पूर्व ही इनका समय माना जाना चाहिए। विद्वानों में वामन के समय के लिए मतैक्यता का अभाव है। काशिकाकार ने तो काव्यलंकार सूत्र के रचयिता वामन और रीति के प्रवर्तक वामन को भिन्न माना है। किन्तु तमाम मत मतान्तरों के पश्चात् यह निश्चित है कि वामन 850 ई. के पूर्व हुए थे जिन्होंने रीतिमत को स्थापित किया और आगे बढ़ाया।

25.3 वक्रोक्ति–सम्प्रदाय

इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य कुन्तक हैं, वक्रोक्ति मतलब टेढ़ा कथन। एक ओर पूरी परम्परा में अलंकार–गुण इस विवेचन की बात चली आ रही थी उसी में आपने–वामन प्रतिपादित रीति–सिद्धान्त और सम्प्रदाय को जाना। भारतीय काव्यशास्त्र में वक्रोक्ति को सिद्धान्त में लाने का श्रेय एक मात्र कुन्तक को है। जिस ग्रन्थ में इन्होंने वक्रोक्ति का प्रतिपादन किया है। इन्होंने इस ग्रन्थ में काव्य के प्रयोजन आदि पर भी अपना मत प्रकट किया है। कुन्तक का समय 10वीं शताब्दी के अन्त और 11वीं का प्रारम्भ माना जाता है। अध्ययन से पता चलता है कि इन्होंने वक्रोक्ति की प्रेरणा अपने पूर्णवर्ती आचार्यों से प्राप्त की है। इनके पूर्व वक्रोक्ति को एक अलंकार के रूप में मान्यता दी गयी थी, जिसे इन्होंने व्यापक रूप में सिद्धान्त के तौर पर प्रतिष्ठापित कर दिया। पूर्ववर्ती आचार्य काव्य के जीवन पर विचार कर ही रहे थे, उसी क्रम में इन्होंने भी 'वक्रोक्तिःकाव्यजीवितम्' कह दिया। अर्थात् वक्रोक्ति ही काव्य का प्राण है। वक्रोक्ति का स्वरूप बताते हुए वैदग्ध्य भंगीभणिति कहा है जिसका अर्थ है– लोक सामान्य से ऊपर उठकर भंगिमापूर्ण विशेष कथन। यही इस सम्प्रदाय का सैद्धान्तिक आधार है। यहाँ यह जानना उचित होगा कि वक्रोक्ति का प्रारम्भ कुन्तक से है। बल्कि इसका एक इतिहास है। वक्र शब्द का प्राचीनतम प्रयोग अथर्ववेद (7–58) में प्राप्त होता है।

कालिदास के पूर्व में बाणभट्ट की कादम्बरी आदि में इसका प्रयोग मिलता है। कालिदास कुन्तक से पूर्ववर्ती हैं। मेघदूत में इन्होंने ''वक्रःपन्था यदपि भवतः'' लिखा है। बाणभट्ट ने वक्रोक्ति शब्द का प्रयोग क्रीडालाप परिहास वाक्हल तथा चमत्कारपूर्ण कथन के अर्थ में किया है। सबसे पहले काव्यशास्त्र में वक्रोक्ति का शास्त्रीय परिप्रेक्ष्य भामह के काव्यालंकार में मिलता है। उन्होंने अलंकार को काव्य की आत्मा स्वीकार किया और वक्रोक्ति को अलंकार का सर्वस्व माना। भामह ने तो यहाँ तक कह दिया कि वक्रोक्ति के बिना कोई अलंकार भी सम्भव नहीं है क्योंकि इसके बिना अर्थ में रमणीयता नहीं आ सकती है। भामह के इस कथन को यदि समझा जाए तो निष्कर्ष यह आयेगा कि वक्रता से हीन कथन में काव्यत्व सम्भव नहीं है वह एक सामान्य बातचीत माना जायेगा। अतः इनके मत मे शब्द और अर्थ की सौम्दर्यपरक स्थिति ही वक्रोक्ति से अनुप्राणित है। इस प्रकार हम देखते हैं कि कुन्तक को वक्रोक्ति के प्रतिपादन के लिए भामह ने पृष्ठभूमि प्रतिपादित किया।

भामह के ठीक बाद दण्डी ने भी काव्यादर्श में वक्रोक्ति को स्वीकार किया और उसे सभी अलंकारों का मूल कहा। समस्त वाड्मय को ही दण्डी ने दो भागों में बाँट दिया–

''द्विधा भिन्नं स्वभावोक्तिर्वक्रोक्तिश्चेति वाङ्मयम्''।

इसका मतलब यह है कि स्वभावोक्ति में सीधा और सहज वर्णन होता है। इसके अलावा वक्रोकित में जो भी वर्णन किया जाता है वह चमत्कार युक्त होता है। वक्रोक्ति का विवेचन वामन ने भी किया किन्तु उसे अर्थालंकार के रूप में माना। वक्रोकित का स्वरूप बताते हुए वामन कहते हैं–

'सादृश्यलक्षणा वक्रोक्तिः'। अर्थात् सादृश्य पर आधारित लक्षणा वक्रोक्ति कहलाती है। रूद्रट ने शब्दालंकार में वक्रोक्ति को रखते हुए श्लेष वक्रोक्ति और काकु वक्रोक्ति माना। ममम्ट और विश्वनाथ ने भी काव्यप्रकाश तथा साहित्य वर्णन में क्रमशः वक्रोक्ति को अलंकार के रूप में ग्रहण किया। किन्तु आगे चलकर कुन्तक ने सिद्धान्त का रूप

दिया। कुन्तक ध्वनिमत से परिचित हैं, इन्होंने वक्रोक्ति की कल्पना इतनी उदात्त, व्यापक तथा बहुमुखी किया है कि उसके भीतर ध्वनि का समस्त भाव ही सिमट जाता है। इनके अनुसार वक्रोक्ति मुख्यतः छः प्रकार की होती है–

1. वर्णविन्यासवक्रता
2. पदपूर्वार्द्धवक्रता
3. प्रकरणवक्रता
4. वाक्यवक्रता
5. प्रत्ययाश्रयवक्रता
6. प्रबन्धवक्रता

उपचारवक्रता के भीतर ध्वनि के प्रचुर भेदों का समावेश किया गया है। कुन्तक की विवेचन या विश्लेषण शक्ति बहुत ही मार्मिक है। अलंकारशास्त्र के मौलिक विचारों का भण्डार है इनका ग्रन्थ। अन्य आचार्य रूद्रट के द्वारा प्रदर्शित प्रकार को अपना कर वक्रोकित को एक सामान्य शब्दालंकार ही मानते हैं। वक्रोक्ति की महनीय भावना को बीजरूप में सूचित करने का श्रेय आचार्य भामह को जाता है और इसी को पल्लवित और पुष्पित करने का कार्य कुन्तक ने किया है। इस तरह आचार्य कुन्तक ने जिन छः प्रकार की वक्रताओं का सामान्य विश्लेषण प्रथम उन्मेष में किया है उनका विश्लेषण द्वितीय उन्मेष में वर्णविन्यास वक्रता, पदपूर्वार्द्धवक्रता तथा प्रत्ययाश्रयवक्रता, तृतीय उन्मेष में वस्तुवक्रता और वाक्य वक्रता तथा अन्तिम चतुर्थ उन्मेष में प्रकरणवक्ता और प्रबन्ध वक्रता का विशेष रूप से विश्लेषण प्रस्तुत किया है। इस प्रकार संक्षेप में इन वक्रता के छः प्रकारों का अध्ययन प्रस्तुत करेंगे–

1. वर्णविन्यासवक्रता

जब वर्ण तथा अक्षरों का सामान्य ढंग से प्रयोग न करके वह विन्यास सहृदयों को आह्लादित करने में समर्थ हो जाता है, वहीं पर वर्णविन्यास वक्रता होती है। इसी वर्णविन्यास वक्रता के कारण शब्द का सौन्दर्य उत्कर्षयुक्त हो जाता है। वर्णविन्यास वक्रता एक दो अथवा बहुत से व्यंजनों के बार–बार आवृत्ति से आती है। कुन्तक ने इस वक्रता को ऐसे ढंग से प्रस्तुत किया है कि उनमें अन्य आचार्यो के सभी अनुप्रास और यमक प्रकार अन्तर्भूत हो जाते हैं। इस वक्रता का प्राण औचित्य है। आचार्य कुन्तक ने प्राचीन आचार्यों द्वारा स्वीकृत अनुप्रास तथा यमक अलंकार का एवं भट्टोद्भट द्वारा स्वीकृत चरूषा, उपनागरिका और आभ्या वृत्तियों का ग्रहण कर लिया है–

1. एतदेव वर्णविन्यासवक्रत्वं चिरन्तनेष्वनुप्रास इति प्रसिद्धम्। (पृ.63)
2. वृत्तिवैचित्र्यमुक्तेति सैव प्रोक्ता चिरन्तनै।। (2/5)
3. यमकं नाम कोऽप्यस्याः प्रकारः परिदृश्यते।। (2/6)

2. पदपूर्वार्द्धवक्रता

सुबन्त एवं तिङन्त पद से अभिप्राय है, कुन्तक का यहाँ पर जैसे पाणिनि ने कहा है ''सुप्तिङन्तम् पदम्'। पद में दो भाग होते हैं सुप् जो परार्ध है तो दूसरा तिङ् जो पूर्वार्द्ध है। प्रातिपदिक सुबन्त होने पर बनता है और धातु तिङन्त होने पर। इस प्रकार जो प्रातिपदिक अथवा धातु के वैचित्र्य के कारण आने वाली रमणीयता हैं, उसे हम पदपूर्वार्द्धवक्रता के नाम से जानते हैं। आचार्य कुन्तक ने पदपूर्वार्द्धवक्रता के अनेक भेद बतायें हैं–

क) रूढ़िवैचित्र्यवक्रता – जहाँ पर रूढ़ि शब्द के द्वारा असम्भाव्य धर्म को प्रस्तुत करने के अभिप्राय का भाव प्रतीत होता है वहाँ, अथवा जहाँ पदार्थ मे रहने वाले ही किसी धर्म की अद्‌भुत महिमा को प्रस्तुत करने का भाव प्रतीत होता है, वहाँ रूढ़िवैचित्र्य वक्रता होती है। इसका उदाहरण कुन्तक ने आनन्दवर्धन द्वारा ध्वन्यालोक से उद्‌धृत किया है–

ताला जाअन्ति गुणा जाला देसहिअएहि धेप्पन्ति।
रईकिरणाणुग्ग हिआइहोन्ति कमलाइ कमलाइ।।

ख) पर्यायवक्रता – जहाँ पर कवि अनेक शब्दों द्वारा पदार्थ के प्रति प्रतिवादित किये जा सकते योग्य होने पर भी वर्ण्यमान पदार्थ के अत्यधिक सौन्दर्य प्रस्तुत करने के लिए किसी विशेष ही पर्याय का प्रयोग करता है वहाँ पर पर्यायवक्रता होती है।

ग) उपचारवक्रता

जहाँ पर कवियों द्वारा अत्यन्त भिन्न स्वभाव वाले पदार्थों के धर्म का एक दूसरे पर अत्यन्त अरूप साम्य के आधार पर उसके लोकोत्तर सौन्दर्य को प्रस्तुत करने के लिए आरोप किया जाता है वहाँ उपचारवक्रता होती है। जैसे– अमूर्त पदार्थ का मूर्त पदार्थ के वाचक शब्द द्वारा कथन, ठोस पदार्थ का द्रव पदार्थ के वाचक शब्द द्वारा कथन, अचेतन पदार्थ का चेतन पदार्थ के प्रतिपादक शब्द द्वारा कथन उपचार वक्रता के प्रथम प्रकार को प्रस्तुत करता है।

इसी प्रकार दूसरे प्रकार की उपचार वक्रता वह होती है, जिसके मूल में विद्यमान रहने पर रूपकादि अलंकार सरस उल्लेख वाले हो उठते हैं। दूसरे प्रकार की उपचारवक्रता रूपकादि अलंकारों की प्राणभूता है– ''तेन रूपकादेरलङ्करणकलापस्य सकलैस्यैवोपवक्रताचारवक्रता जीवितमित्यर्थः।

घ) विशेषणवक्रता

क्रियारूप अथवा कारक रूप पदार्थ का सौन्दर्य जहाँ पर उसके विशेषणों के माहात्म्य से समुल्लसित होता है, वहाँ पर विशेषण वक्रता होती है। यहाँ पर क्रिया अथवा कारक से तात्पर्य पदार्थ स्वभाव की सुकुमारता की प्रकाशकता एवं अलंकार के सौंदर्यातिशय की परिपुष्टि है। इस विषय पर कुन्तक का कहना है कि –

एतदेव विशेषणवक्रत्वं नाम प्रस्तुतौचित्यानुसारि सकल– सत्काव्यजीवितस्वेनलक्ष्यते, यस्मादनैनेय रसः परां परिपोषणदवीमवतार्यते।

ङ) संवृत्तिवक्रता

जहाँ पर पदार्थ का स्वरूप किसी वैचित्र्य का प्रतिपादन करने के लिए उसके अपूर्ण वाचक भूत सर्वनाम आदि के द्वारा छिपाया जाता है, वहाँ संवृत्तिवक्रता होती है।

च) पदमध्यान्तर्भूत प्रत्ययवक्रता–

जहाँ पर पद के मध्य में आने वाले कृत्यादि प्रत्यय अपने उत्कर्ष के द्वारा वर्ण्यमान पदार्थ के औचित्य की रमणीयता को अभिव्यक्त करते हैं वहाँ पदमहयान्तर्भूत प्रत्ययवक्रता होती है।

छ) वृत्तिवैचित्र्य वक्रता–

जहाँ पर वैयाकरणों के यहाँ प्रसिद्ध अव्ययीभाव आदि समास, तद्धित एवं सुपषधातु वृत्तियों को अपने सजातियों की अपेक्षा विशिष्ट रमणीयता।

3. क्रियावैचित्र्यवक्रता

अभी तक आपने आचार्य कुन्तक द्वारा प्रतिपादित पदपूर्वार्द्धगत प्रातिपदिक की वक्रताओं का विवेचना समझा। अब आप धातु की वक्रता का विवेचन समझेंगे। चूँकि धातु की वक्रता का मूल, क्रिया की विचित्रता है इसीलिए कुन्तक ने इसका नाम क्रियावैचित्र्यवक्रता रखा और इनके प्रकार भी स्पष्ट किए हैं–

''तस्य च (अर्थात् धातुरूपस्य पूर्णभागस्य च) क्रियावैचित्र्यनिबन्धनमेव वक्रत्वं विद्यते। तस्यात् क्रियावैचित्रस्यैव की दशाःक्रियन्तश्च प्रकाराः सम्भवन्तीति तत्स्वरूपनि रूपणार्थमाह।'' (पृ0 245)

क्रियावैचित्र्यवक्रता के कुन्तक ने पाँच प्रकार बताये हैं–

1. कर्त्ता का अत्यधिक अन्तरङ्ग होना– कर्न्तुरत्यन्तरङ्गवम् (2128)
2. कर्त्ता की अपने सजातीय दूसरे कर्त्ता की अपेक्षा विचित्रता।
3. अपने विशेषण के द्वारा आने वाली विचित्रता।
4. सादृश्य आदि सम्बन्ध का आश्रय ग्रहण कर किये दूसरे धर्म के आरोप के कारण आने वाली रमणीयता
5. कर्म इत्यादि कारकों का संवरण।
4. पदपरार्ध अथवा प्रत्ययवक्रता

पदपरार्थ अथवा प्रत्यय वक्रता को हम छः भागों में विभक्त करके समझ सकते हैं–

1. कालवैचित्र्यवक्रता
2. कारकवक्रता
3. सङ्ख्यावक्रता
4. पुरुषवक्रता
5. उपग्रहवक्रता
6. प्रत्ययविहित प्रत्ययवक्रता

जहाँ पर वर्ण्यमान पदार्थ के औचित्य का अत्यन्त अन्तरंग होने के कारण अर्थात् उसके उत्कर्ष को उत्पन्न करने वाला वैयाकरणों में प्रसिद्ध लट् आदि प्रत्ययों द्वारा वाच्य वर्तमान आदि काल रमणीयता को प्राप्त करता है, वहाँ कालवैचित्र्यता होती है।

जहाँ परिपुष्ट करने के लिए कवि कारकों के परिवर्तन को प्रस्तुत करते हैं वहाँ कारक वक्रता होती है। इसी प्रकार जहाँ कविजन काव्यवैचित्र्य का प्रतिपादन करने की इच्छा से वचन विपरिणाम को प्रस्तुत करते हैं वहाँ संड्ख्यावक्रता होती है। कविजन जहाँ काव्य सौन्दर्य को प्रस्तुत करने की इच्छा से उत्तम अथवा मध्यम पुरुष के स्थान पर कभी प्रथम पुरुष का प्रयोग कर देते हैं अथवा अस्मद् या युस्मद् आदि का प्रयोग न कर केवल प्रातिपदिक मात्र को प्रयोग करते हैं वहाँ पुरुषवक्रता होती है। इसी प्रकार

धातुओं के लक्षण के अनुसार निश्चित पद (आत्मने पद अथवा परस्मैपद) के आश्रय वाले प्रयोग का उपग्रह करते हैं। अतः वहाँ कवि जन वर्ण्यमान पदार्थ के औचित्य के अनुरूप सौन्दर्य की सृष्टि के लिए आत्मनेपद अथवा परस्मैपद में से किसी एक पद का ही प्रयोग करते हैं वहाँ उपग्रह वक्रता होती है। जहाँ पर तिङादि प्रत्ययों से बनाया गया अन्य प्रत्यय किसी अपूर्व रमणीयता को प्रस्तुत करता है वह अभी तक बताई गई वक्रताओं से भिन्न एक प्रत्यय विहित प्रत्ययवक्रता को प्रस्तुत करता है।

5. उपसर्गनिपातजनित पदवक्रता

आचार्य कुन्तक ने उपसर्गों एवं निपातों के अव्युत्पन्न होने के कारण उनका अवयवों के अभाव में कोई विभाग सम्भव नहीं था अतः न वे पदपूर्वार्द्धवक्रता के अन्तर्गत ही इसे विवेचित कर सकते थे और न पदपरार्थवक्रता के अन्तर्गत ही। जहाँ पर उपसर्ग तथा निपात सम्पूर्ण वाक्य के एकमात्र प्राणरूप में श्रृंगार आदि रसों को प्रकाशित करते हैं, वहाँ उपसर्ग एवं निपातजनित पदवक्रतायें हुआ करती हैं। यद्यपि इन उपसर्गादि से लगे हुए अन्य प्रत्यय भी पदवक्रता को प्रस्तुत करते हैं जैसे– ''येन श्यामंवपुरतितरां कान्तिमापत्स्यते ते'' में अति के बाद आया हुआ ''तराम्'' प्रत्यय किन्तु इसका पूर्वोक्त प्रत्ययवक्रता के अन्तर्गत ही अन्तर्भाव हो जाने से अलग विवेचन कुन्तक ने किया है। अतः चार प्रकार के पदों की विषयभूत वक्रताओं का उनके भेद प्रभेद सहित विवेचन करके अन्त में उसके विषय इस प्रकार हैं–

'तदेवमियमनेकाकारा वक्रत्वविच्छिन्तिश्चतुर्विद्यपदनिषया वाक्यैकदेशजी वितत्वेनापि परिस्फुरन्ती सकलवाक्यवैचित्र्य– निबन्धनतामुपयाति।

6. वस्तुवक्रता अथवा पदार्थवक्रता

आचार्य कुन्तक ने तृतीय उन्मेष में वस्तु वक्रता अथवा पदार्थवक्रता के विषय में बताया है। जहाँ पर विवक्षित अर्थ का प्रतिपादन करने में पूर्णतया समर्थ, एवं अनेक प्रकार की वक्रताओं से विशिष्ट शब्द के द्वारा ही अत्यन्त रमणीय स्वभाविक धर्म से मुक्त रूप में वस्तु का वर्णन किया जाता है वहाँ पर वस्तुवक्रता होती है। इस प्रकार की वस्तुवक्रता को प्रस्तुत करते समय कविजन बहुत से उपमादि अलंकारों का उपयोग नहीं करते क्योंकि वैसा करने से वस्तु की सहज सुकुमातरा के म्लान हो जाने का भय रहता है। जहाँ कवियों को विभाव आदि के औचित्य से श्रृंगारादि श्लोकों की प्रतीति करानी होती है वहाँ वे इस वस्तुवक्रता का सहारा लेते हैं। अलंकारादि का प्रयोग बहुत कम करते हैं। जहाँ कहीं भी अलंकारों का उपयोग करते हैं वह केवल उस वस्तु की स्वभाविक सुकुमारता को ही और भी अधिक समुन्नमीलित करने के लिए ही न किसी अलंकार वैचित्र्य को प्रस्तुत करने के लिए किया है।

25.4 सारांश

संस्कृत काव्यशास्त्र के सर्वेक्षण सम्बन्धी खण्ड की इस इकाई के अध्ययन के बाद आपने जान लिया होगा कि काव्यशास्त्र के सम्प्रदायों का सैद्धान्तिक रूप में उदय कब हुआ और आचार्यों ने इसकी विकास यात्रा में किस प्रकार योगदान दिया। भरतभूमि से ही सिद्धान्तों का साम्प्रदायिक रूप में उदय हुआ। रस सम्बन्धी मान्यता के आचार्य भरतमुनि ने सबसे पहले सूत्रपात किया। इन्हीं के बाद भामह ने शब्दार्थ के भीतर अलंकारता की बात स्वीकार करके काव्यशास्त्र के सोपान को आगे बढ़ाया। दण्डी भी रस, गुण और अलंकार के विवेचक रहे। इस क्रम में संस्कृत काव्यशास्त्र में गुण, रस

और अलंकार का विवेचन चला आ रहा था। वामन ने विशिष्ट पद रचना को आधार बनाकर रीति का प्रतिपादन किया और रीति को ही काव्य के आत्मत्व के रूप में स्वीकार किया। इसकी यह रीति गुणों का आश्रय ग्रहण कर आगे बढ़ीं। जिसमें वैदभी, गोडी और पांचाली रीतियों का नाम अध्ययन क्रम में आते हैं। वामन ने पूर्ववर्तियों की अपेक्षा गुणों की संख्या कम माना। इनके ग्रन्थ काव्यालंकारसूत्रवृत्ति मे यह विवेचन पाया जाता है कि भामह ने जिस वक्रोक्ति को काव्य में चमत्कारिक तत्व के रूप में माना था उसी का पल्लवन कुन्तक ने अपने ग्रन्थ वक्रोन्क्तिजीवितम् में सैद्धान्तिक रूप में कर दिया। 'वक्रोक्तिः काव्यजीवितम' इनका काव्यलक्षण है जो काव्य में वक्रोक्ति को ही प्राणतत्व के रूप में स्वीकार करता है। छः प्रकार की वक्रोक्तियों का प्रतिपादन करते हुए वामन ने वक्रोक्ति को प्रतिष्ठापित किया।

प्रस्तुत इकाई में आपने आचार्य वामन के रीति–सिद्धान्त तथा कुन्तक के वक्रोक्तिमत का अध्ययन किया है। इस इकाई का अध्ययन कर लेने के बाद आप दोनों सम्प्रदायों के आचार्यों का परिचय बताकर रीति और वक्रोक्ति के सिद्धांतों को समझा सकेंगे।

25.5 शब्दावली

रीति – विशेष प्रकार की पद–रचना
वक्रोक्ति – लोकसामान्य से ऊपर उठकर, टेढ़ा कथन
वृत्तिवैचित्र्यवक्रता – वृत्तियों को अपने सजातियों की अपेक्षा विशिष्ट रमणीयता।
वस्तुवक्रता – विशिष्ट शब्द के द्वारा अत्यन्त रमणीय स्वाभाविक रूप में वस्तु का वर्णन किया जाय, उसे वस्तुवक्रता होती है।
समुन्मीलित – अर्थ की सुकुमारता को अपेक्षाकृत अधिक प्रकट करना

25.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

1) पुस्तक का नाम–संस्कृत साहित्य का इतिहास, प्रकाशक का नाम– चौखम्भा विश्वभारती प्रकाशन वाराणसी, लेखक का नाम– उमाशंकर शर्मा ऋषि, सम्पादक का नाम–उमाशंकर शर्मा ऋषि, प्रकाशक का नाम– चौखम्भा विश्वभारती प्रकाशन वाराणसी

2) संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास – वी.वी. काणे, चौखम्भा प्रकाशन वाराणसी, काव्यमाला सिरीज।

3) संस्कृत शास्त्रों का इतिहास – बलदेव उपाध्याय, चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी

4) संस्कृत साहित्य का इतिहास – वाचस्पति गैरोला,चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी

25.7 बोध प्रश्न

1. संस्कृत काव्यशास्त्र में वामन के योगदान का निरूपण कीजिए।
2. रीति–सिद्धान्त का उल्लेख कीजिए।
3. कुन्तक ने वक्रोक्ति को किस प्रकार काव्य की आत्मा माना? सिद्ध कीजिए।
4. संयुक्त रूप से रीति और वक्रोक्ति सम्प्रदाय का परिचय लिखिए।